सितम्बर 2026, मूल्य : 60

पूर्वा

सृजन की उड़ान

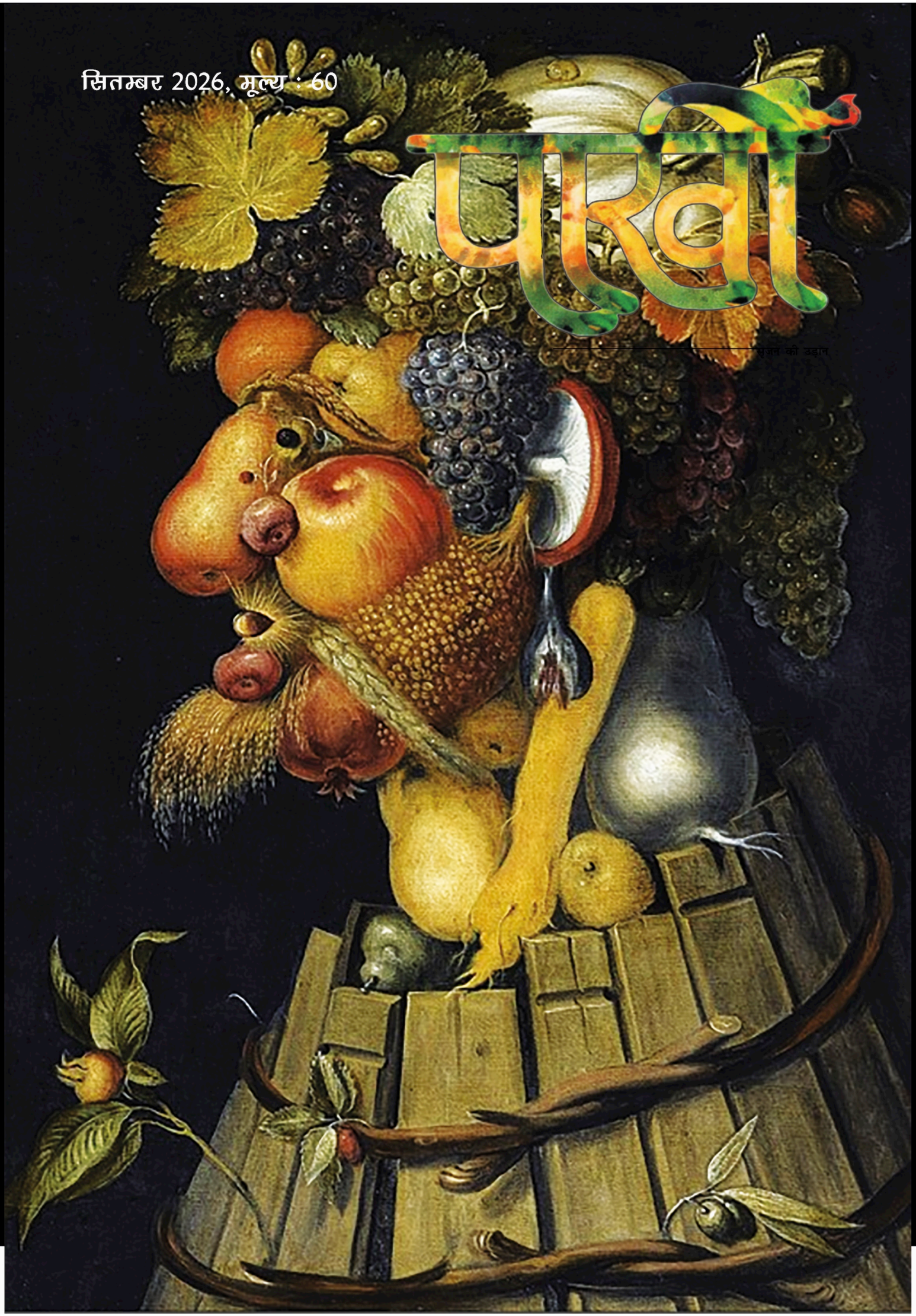

संपादक
अपूर्व

महाप्रबंधक
अमित कुमार

शब्द-संयोजन
उषा ठाकुर

रेखाचित्र : मार्टिन जॉन

वर्ष : 18, अंक 12, सितंबर, 2026

मूल्य :

प्रति	:	रु. 40.00
वार्षिक, रजिस्टर्ड डाक सहित	:	रु. 1000.00
आजीवन, रजिस्टर्ड डाक सहित	:	रु. 10000.00

भुगतान इंडिपेंडेंट मीडिया इनीशिएटिव सोसाइटी के नाम से किया जाए।
भुगतान ऑनलाइन या सीधे बैंक में भी जमा कर सकते हैं।
बैंक : UNION BANK
खाता संख्या : 520101255568785
IFSC : UBIN **0905011**
बैंक शाखा : जी-28, सेक्टर-18, नोएडा-201301
उत्तर प्रदेश

प्रकाशक

इंडिपेंडेंट मीडिया इनीशिएटिव सोसाइटी
बी-107, सेक्टर-63, नोएडा-201309
गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश
दूरभाष : 0120-4330755
editor@pakhi.in
pakhimagazine@gmail.com
www.facebook.com/pakhimagazine
Web portal : www.pakhi.in

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अंतर्गत विचारणीय। स्वामित्व इंडिपेंडेंट मीडिया इनिशिएटिव सोसाइटी के लिए प्रकाशक, मुद्रक नारायण सिंह राणा द्वारा चार दिशाएं प्रिंटर्स प्रा.लि. जी-39, नोएडा से मुद्रित एवं बी-107, सेक्टर 63, नोएडा से प्रकाशित।

ज्यूसेपे आर्किम्बोल्डो की 'Autumn' (1573)

16वीं शताब्दी के इतालवी कलाकार ज्यूसेपे आर्किम्बोल्डो की यह अनोखी कृति पतझड़ को एक मानवीय चेहरे के रूप में प्रस्तुत करती है। फल, अंगूर की बेलें, पत्तियां और मौसमी उपज मिलकर एक चेहरा बनाती हैं–मानो प्रकृति स्वयं मनुष्य का रूप ले रही हो।
'Autumn' केवल ऋतु का चित्र नहीं, बल्कि समय और जीवन की परिपक्वता का रूपक है। आर्किम्बोल्डो की Four Seasons शृंखला में शरद जीवन के उस पड़ाव का प्रतीक है, जब अनुभव पक चुका होता है और बीते समय की स्मृतियां साथ चलती हैं।
सितंबर के लिए यह पेंटिंग इसलिए खास है, बदलती ऋतु, पकती प्रकृति और बीतते समय का एक साथ दिखाई देता चेहरा।

अनुक्रमणिका

संपादकीय/अपूर्व

समाज के प्रश्न और साहित्य 4

चिट्ठी आई है 7

कहानियां/लघु कथाएं/अनुदित कहानी/व्यंग्य

ब्रेक-अप	:	गजेंद्र रावत	8
स्वर्गारोहण	:	हरजेंद्र चौधरी	11
आंदोलन के बाद	:	क्रांति	20
बरामदे की खाली कुर्सी	:	महिमा सामंत	23
अघोषित शासक *(लघु कथा)*	:	मार्टिन जॉन	24
हत्यारे न्यायाधीश	:	राजकुमार सोनी	25
दूसरी गलती *(लघु कथा)*	:	राम मूरत 'राही'	53
यादों का बैंक (लघु कथा)	:	कृति आरके जैन	66

कविताएं/ग़ज़लें/गीत

कुमार विश्वबंधु की कविताएं 40

मनीषा पांडेय की कविता 41

मूल्यांकन

सच साझा करतीं कहानियों : प्रकाश देवकुलिश 42

आलोचनात्मक विवेक की यात्रा: जीतेंद्र गुप्ता 45

घुमक्कड़ी कविताओं का डार्करूम : नरेंद्र पुंडरीक 51

बेचैन करने वाली कहानियां : विजय कुमार तिवारी 54

कथाओं के विविध गहरे स्वर : अनिता रश्मि 58

आलेख

नई वाली हिंदी-साहित्य का नया चेहरा या पुराने लुगदीपन का डिजिटल अवतार? : सुशील कुमार 61

आनंद का बाजारीकरण और प्रकृति से हमारा विच्छेद : शारदा यादव 65

स्थाई स्तंभ

कल्पित कथन

दो बिछड़े भाइयों की दास्तान और मुरादाबाद के चेखव : कृष्ण कल्पित 67

सत्याग्रह

गुलजार साहब, नए देशभक्ति गीत क्यों चाहिए? : प्रियदर्शन 70

पाखी संवाद–जहां शब्द डरते नहीं

मनुष्य की चेतना को स्वतंत्र करने वाला स्वप्नदर्शी 72
जिसने भविष्य की नहीं, मनुष्य की मृत्यु देखी 76
क्या सपनों का यह सौदागर हमारे समय का सबसे गलत समझा गया लेखक है? 80
वह लेखक जिसने मनुष्य की आत्मा को शैतान के सामने खड़ा कर दिया 84
कहानी से आगे, एक पूरी साहित्यिक बहस का नाम 88
जिसने प्रेम को विद्रोह और पीड़ा को कविता बना दिया 92

समाज के प्रश्न और साहित्य

राजेंद्र यादव ने 'हंस' को केवल कहानियों, कविताओं और साहित्यिक बहसों की पत्रिका नहीं रहने दिया था। उन्होंने उसे अपने समय की बेचैनी में हस्तक्षेप करने वाला मंच बनाया। उनके लिए साहित्य का अर्थ केवल कहानियां, कविताएं या फिर आलोचनाओं और पुस्तकों के मूल्यांकन का संसार भर नहीं था, बल्कि उनके लिए साहित्य का असली अर्थ उस समाज के भीतर जाना था जिसमें वे वाक्य पैदा होते हैं, उसकी राजनीति, उसकी हिंसा, उसके पाखंड, उसकी असमानता और उसके उन सवालों तक, जिनसे सुविधाजनक दूरी बनाए रखना सबसे आसान होता है।

राजेंद्र जी की संपादकीय दृष्टि का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष शायद यही था कि वे साहित्य को 'समय से बाहर' रखने के विरुद्ध थे। वे जानते थे कि लेखक अगर अपने समय के सबसे असुविधाजनक प्रश्नों से बचता है तो उसकी भाषा चाहे जितनी सुंदर हो, वह धीरे-धीरे अपने समाज से कट जाती है। आज 'पाखी' के सामने भी ऐसा ही एक प्रश्न खड़ा है।

यह प्रश्न साहित्य के बाहर का दिखाई देता है, न्यायपालिका का प्रश्न, भारत के मुख्य न्यायाधीश का प्रश्न, अदालत की भाषा का प्रश्न, छात्रों के विरोध का प्रश्न। लेकिन क्या वास्तव में यह साहित्य से बाहर का सवाल है? शायद नहीं। क्योंकि जिस क्षण किसी शक्तिशाली संस्था की भाषा में मनुष्य की गरिमा का प्रश्न उठता है साहित्य वहां से दूर नहीं रह सकता। और आज भारतीय न्यायपालिका के संदर्भ में यही प्रश्न सबसे बेचैन करने वाला है।

न्याय की कल्पना मनुष्य हमेशा एक ऐसी जगह के रूप में करता है जहां मनुष्य अपनी अंतिम उम्मीद लेकर जाता है। राज्य से लड़ते हुए, पुलिस से लड़ते हुए, व्यवस्था से हारते हुए, राजनीति से निराश होते हुए नागरिक अंततः अदालत की ओर देखता है। उसके पास अमूमन पैसा नहीं होता, सत्ता नहीं होती, राजनीतिक ताकत नहीं होती, मीडिया तक पहुंच नहीं होती, लेकिन विश्वास होता है कि अदालत में उसकी बात सुनी जाएगी। यह विश्वास न्यायपालिका की सबसे बड़ी पूंजी है। दूसरी तरफ न्यायपालिका के पास सेना नहीं होती, पुलिस नहीं होती, लेकिन उसके पास जो सबसे महत्वपूर्ण शक्ति होती है वह है नैतिक अधिकार। और नैतिक अधिकार कानून की धाराओं से जितना बनता है, न्यायधीशों की भाषा से भी उतना ही बनता है।

यही कारण है कि उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति सूर्यकांत से जुड़े हालिया प्रसंगों को केवल एक न्यायिक विवाद की तरह पढ़ना पर्याप्त नहीं होगा। एक सुनवाई के दौरान बेरोजगार युवाओं के मीडिया, सोशल मीडिया और आरटीआई एक्टिविज्म की ओर जाने की चर्चा करते हुए 'कॉकरोच' और 'पैरासाइट' जैसे शब्दों का इस्तेमाल उन्होंने किया। यह टिप्पणी सार्वजनिक बहस का विषय बनी। यहां यह बहस की जा सकती है कि टिप्पणी का संदर्भ क्या था? मामला क्या था? याचिका कितनी उचित थी? और अदालत की नाराजगी का कारण क्या था? लेकिन साहित्य और समाज के लिए उससे पहले एक दूसरा सवाल खड़ा होता है कि क्या शीर्ष न्यायपालिका को असहमति व्यक्त करने वाले नागरिक की भाषा और उसकी गरिमा के बीच अंतर करना नहीं आना चाहिए?

किसी याचिका को खारिज करना न्यायालय का अधिकार है। किसी तर्क को अस्वीकार करना भी न्यायालय का अधिकार है। किसी याचिकाकर्ता को यह बताना भी न्यायालय का अधिकार है कि उसकी याचिका न्यायिक प्रक्रिया का दुरुपयोग है। लेकिन नागरिक की सामाजिक स्थिति को अपमान की उपमा में बदल देना एक अलग बात है। खासकर तब, जब सामने युवा हों। वे युवा जो बेरोजगारी, शिक्षा, प्रतियोगी परीक्षाओं, अवसरों की कमी और संस्थाओं के प्रति बढ़ती अविश्वसनीयता के बीच अपना रास्ता तलाश रहे हों। उन्हें 'कॉकरोच' कहना केवल एक शब्द नहीं है। शब्द जब न्याय की कुर्सी से निकलते हैं तो वे अपने साथ पद की शक्ति भी लेकर निकलते हैं। यही वह जगह है जहां भाषा राजनीति बन जाती है और राजनीति सामाजिक अनुभव।

न्यायमूर्ति सूर्यकांत की इसी भाषा ने कॉकरोच जनता पार्टी को जन्म देने का काम किया और फिर दिल्ली के प्रदर्शन का प्रसंग सामने आया। छात्रों के प्रदर्शन पर पुलिस कार्रवाई के संबंध में अदालत के सामने वीडियो देखने की मांग हुई। अदालत की ओर से यह टिप्पणी सामने आई कि वीडियो देखने में उसकी दिलचस्पी नहीं है और उसके पास 'समय' नहीं है, वकील से अदालत का समय बर्बाद न करने को कहा गया।

फिर वही सवाल। कानूनी प्रक्रिया की दृष्टि से अदालत का वीडियो देखना जरूरी था या नहीं, इसका उत्तर न्यायिक